वीर संवत २४९२, ज्येष्ठ कृष्ण १३, गुरुवार, दिनाङ्क १६-०६-१९६६
गाथा २३ से २६ प्रवचन नं. १०

श्री योगसार शास्त्र है। योगीन्द्रदेव कृत २३ वीं गाथा जरा थोड़ी चली है, फिर से थोड़ी लेते हैं।

सुद्ध-पएसहँ पूरियउ, लोयायास-पमाणु।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, पावहु लहु णिव्वाणु॥२३॥

भगवान आत्मा, इस देह में असंख्य प्रदेश शुद्ध से परिपूर्ण पड़ा है। क्षेत्र लिया है न? अर्थात् उसका रूप यहाँ असंख्य प्रदेश में ही पूर्ण है – ऐसा कहते हैं। आत्मा असंख्य प्रदेशी है। एक परमाणु (आकाश की) जितनी जगह को रोके, उतने भाग को प्रदेश कहते हैं। ऐसे असंख्य प्रदेशी शुद्ध प्रदेश है और इससे वह परिपूर्ण है। इतने में आत्मा देह, वाणी, मन, क्षेत्र दूसरा कर्म का क्षेत्र दूसरा विकार का.... असंख्य प्रदेश का पुंज प्रभु परिपूर्ण क्षेत्र में यह परिपूर्ण आत्मा इतने में है। समझ में आया? उसे **वही अपना आत्मा है।** यह असंख्य प्रदेश में परिपूर्णता इतने ही क्षेत्र में और एक क्षेत्र में अनन्त शुद्ध गुणों के असंख्य प्रदेश-असंख्य अंश अनन्त गुणों से भरपूर परिपूर्ण है। ऐसे आत्मा को रात-दिन, दिन-रात उसका मनन करो। ओहो...हो...! कहो, समझ में आया? रात-दिवस ऐसा ही **मुणहु।** जानो मूल तो है, अनुभव करो।

असंख्य प्रदेश में – इतने में – परिपूर्ण क्षेत्र में इतने में ही पूरा आत्मा अनन्त गुणों का भरा पिण्ड इतने में ही है। कोई ऐसा कहे कि बाहर व्यापक है.... (तो) यह बात झूठ है – यह बात कहने के लिये यहाँ शुद्ध असंख्य प्रदेशी पूर्ण आत्मा है – (ऐसा कहा है)। समझ में आया? उसका क्षेत्र असंख्य प्रदेश में ही पूरा पड़ता है, अधिक दूसरा लम्बा है

नहीं। समझ में आया? कोई जीव को लोकव्यापक कहते हैं, अनन्त में अनन्त मिल जाता है.... सब अनन्त आत्मायें, एक के सब अंशरूप है – ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा असंख्य अंशोरूप प्रदेशों से परिपूर्ण शुद्ध भरा है। उसका **अणुदिण मुणहु....** दिन-दिन, रात-दिन उसका अनुभव करो। देखो, यह मोक्षमार्ग!

आत्मा अखण्ड अनन्त गुण का पिण्ड, उसे अनुसरण कर अनुभव करो, आत्मा का वेदन करो, आत्मा की शान्ति का वेदन करो – इसका नाम धर्म और मुक्ति का मार्ग है। समझ में आया? यहाँ तो ताजा अच्छा माल वर्णन किया है। ऐसे पुण्य-पाप के विकल्प भले हो, उसके साथ यहाँ कोई काम नहीं है। भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश के पूर से भरपूर पूरा है, उसका अनुभव करने से **णिव्वाणु लहु पावहु.... शीघ्र निर्वाण प्राप्त करो।** अपने स्वरूप की पूर्ण शुद्धतारूपी निर्वाण, अपने आत्मा की पूर्ण शुद्धतारूपी निर्वाण को प्राप्त करो। इस उपाय द्वारा; दूसरा कोई उपाय नहीं है। कहो, समझ में आया? इसमें मन-वचन और काया की क्रिया और सब बहुत कल आया था। आहा...हा...!

यहाँ बन्ध की बात ही नहीं। बन्ध, वह स्वयं अपने स्वरूप को भूले तो बन्ध होता है; अपने स्वरूप को सावधानी से संभाले तो मुक्ति होती है, बाकी दूसरी सब बातें हैं। अपना असंख्य प्रदेशी स्वभाव, अनन्त गुण से भरपूर, उसे भूले और राग-द्वेष तथा पुण्य-पाप और परक्षेत्र में मेरी सत्ता है – ऐसी मान्यता करे तो वह परिभ्रमण करता है। इसे कर्म के साथ क्या काम है? समझ में आया? यह उनसे गुलांट मारकर बात है। भगवान आत्मा... जैसे कोठी में माल पड़ा होता है न? माल पूरा। वैसे ही इन असंख्य प्रदेशों में आत्मा का सारा माल पड़ा है।

मुमुक्षु – कोठी छोटी और माल ज्यादा?

उत्तर – माल अनन्त! क्षेत्र अल्प हो, उसका यहाँ क्या काम है? भाव अनन्त है। यहाँ पता नहीं पड़ता? यहाँ ज्ञान की एक समय की पर्याय, एक समय की पर्याय अनन्त को ख्याल में लेती है। क्षेत्र तो इतना छोटा है, लो! आँख का क्षेत्र कितना? देखो! यह तो फिर देखने का इतना (बड़ा)। देखनेवाला तो आँख से देखता है। ऐसे पच्चीस-पचास

योजन तक पर्वत पर कितनी अधिक नजर जाती है ! उसे छोटे क्षेत्र में रहा हुआ छोटा ही जाने – ऐसा कुछ नहीं है। छोटे क्षेत्र में रहा हुआ अनन्त क्षेत्र को अपने अस्तित्व में रहकर जानता है – ऐसी उसकी अपनी स्वभाव की सामर्थ्यता है। ऐसे भगवान आत्मा को अन्तर में देख, कहते हैं। तेरा घर असंख्य प्रदेशी है – ऐसा कहते हैं। तेरा घर कर्म, शरीर, वाणी, मन-वचन है, वह तेरा घर नहीं है।

परमात्मा, भगवान होवे तो उनका घर तुझसे पृथक् है। उनसे तेरा घर तो यहाँ इतने में ही है। समझ में आया ? असंख्य प्रदेश का पिण्ड प्रभु, शुद्ध अनन्त गुणों से भरपूर – ऐसे आत्मा का ध्यान करो। आहा...हा... ! बहुत संक्षिप्त ! यह तो योगसार है न ! समझ में आया ? **शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त करो।** लो, यह बात कल आ गयी थी। थोड़ी-सी ली। अब, २४ वीं गाथा।

☆ ★ ☆

व्यवहार से आत्मा शरीरप्रमाण है

णिच्छइँ लोय-पमाणु मुणि, ववहारैं सुसरीरु।
एहउ अप्प-सहाउ मुणि, लहु पावहि भव-तीरु ॥२४॥

निश्चय लोक प्रमाण है, तनु प्रमाण व्यवहार।
ऐसा आतम अनुभवो, शीघ्र लहो भवपार॥

अन्वयार्थ – (णिच्छइ लोयपमाण ववहारे सुसरीरू मुणि) निश्चय से आत्मा को लोकप्रमाण व व्यवहारनय से अपने शरीर के प्रमाण जानो **(एहउ अप्पसहाउ मुनि)** ऐसे अपने आत्मा के स्वभाव को मनन करते हुए **(भवतीरू लहु पावहु)** यह जीव संसार के तट को शीघ्र ही पा लेता है अर्थात् शीघ्र ही संसार-सागर से पार हो जाता है।

☆ ★ ☆

व्यवहार से आत्मा शरीर प्रमाण है। निश्चय से लोकप्रमाण है। वे असंख्य प्रदेश कहे न ? उन प्रमाण।

णिच्छइँ लोय-पमाणु मुणि, ववहारैं सुसरीरु।
एहउ अप्प-सहाउ मुणि, लहु पावहि भव-तीरु॥२४॥

लहु शब्द इसमें बहुत आता है। यहाँ तो भव का अभाव करने की बात है। भव मिले, वह कोई वस्तु नहीं है; वह तो अनादि संसारी (को है) – यह फिर कहेंगे – बाद के श्लोक में कहेंगे। समझ में आया? चौरासी लाख घूमा, बाद में कहेंगे। आत्मा अपने स्वभाव को प्राप्त करे और भव का अभाव करे – यह बात है। भव प्राप्त करे और उसमें भटके, यह तो अनादि का संसारभाव है, उसमें इसने नया क्या किया? इसलि कहते हैं – **णिच्छइ लोयपमाण ववहारसुसरीरु - मुणि** निश्चय से आत्मा लोक-प्रमाण है। लोकप्रमाण अर्थात्? लोक के जितने असंख्य प्रदेश हैं, उतना निश्चय से असंख्य प्रदेशी (आत्मा) यहाँ है – ऐसा कहते हैं। लोकप्रमाण चौड़ा – ऐसा नहीं। लोक के – आकाश के जितने असंख्य प्रदेश हैं, उतना असंख्य प्रदेशी यहाँ लोकप्रमाण निश्चय से भगवान अपने क्षेत्र में – असंख्य प्रदेश में विराजमान है। वह परमाणु में नहीं आता, कर्म में नहीं आता, राग में भी नहीं आता – ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

असंख्य प्रदेश में रहा हुआ तत्त्व, वह निश्चय से उसमें रहा है और व्यवहार से अपने शरीरप्रमाण (है)। इस निमित्तरूप से यहाँ गिनो तो शरीर के आकार प्रमाण वहाँ रहा है। यह तो परद्रव्य की – निमित्त की अपेक्षा से व्यवहार (से) इतने में (रहा है।) निश्चय (से) अपने असंख्य प्रदेशों में रहा है। निश्चय से अपने असंख्य प्रदेशों में, व्यवहार से इस शरीर के प्रमाण में निमित्तमात्र कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु – यह असंख्य प्रदेशी ही, इसमें लम्बाई-चौड़ाई नहीं?

उत्तर – यह असंख्य प्रदेश, यही इसका क्षेत्र, इतना चौड़ा क्षेत्र है। यह घर और मकान; स्त्री और पुत्र, मकान इसका नहीं है – ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु – दो फीट, पाँच फीट, दश फीट – ऐसा नहीं।

उत्तर – यह नहीं; असंख्य प्रदेशी.... फिर हजार योजन में व्यापे या इतने साढ़े सात हाथ में मोक्ष जाए – उसकी बात लेनी है न यहाँ। असंख्य प्रदेश में रहा हुआ भगवान

आत्मा है। यह असंख्य प्रदेश उसका क्षेत्र है। फिर वह क्षेत्र कैसा होगा ? समझ में आया ? असंख्य प्रदेश आत्मा का क्षेत्र है। ऐसे असंख्य प्रदेश में पूरा शरीर प्रमाण पृथक्... पृथक्... पृथक... पृथक् (है)। जैसे पानी का कलश हो, (उसमें) उस कलश का आकार और अन्दर पानी का आकार और पानी का स्वरूप; उस पानी का क्षेत्र भी कलश के आकार होने पर भी, स्वयं के ही आकार से स्वयं में है। इसी प्रकार इस शरीर प्रमाण आत्मा अन्दर होने पर भी, स्वयं स्वयं के ही कारण से अपने असंख्य प्रदेशी आकार में रही हुई सत्ता है। सत्ता है, अस्तित्ववाला तत्त्व है तो उसका कोई आकार, अवगाहन, चौड़ाई होगा या नहीं ? वह चौड़ाई कितनी ? कि असंख्य प्रदेशी चौड़ाई है। इतना असंख्य प्रदेशी क्षेत्र, जिसमें अनन्त गुण भरे हैं, उनसे वहाँ पूरा क्षेत्र पड़ता है। उसका क्षेत्र कर्म का नहीं, राग का नहीं, शरीर का नहीं, यह स्त्री-पुत्र-परिवार – यह उसका क्षेत्र नहीं। वह क्षेत्र उनका है, वह इसका क्षेत्र नहीं। आहा...हा... ! कहो, इसमें समझ में आया ? वे सब क्षेत्र आत्मा के नहीं। आत्मा का क्षेत्र असंख्य प्रदेश... उस बंगले में भगवान अनन्त गुण से विराजमान है; वहाँ पूरा-सम्पूर्ण पड़ा है। व्यवहार से शरीरप्रमाण है – ऐसा कहा जाता है; निमित्त है इसलिए।

एहउ अप्पसहाउमुणि ऐसे अपने आत्मा के स्वभाव को **मुणि** (अर्थात्) **जानो।** भगवान आत्मा अनन्त शान्तरस से भरपूर महा पूर्ण आनन्दसागर से भरपूर है, उसमें डुबकी मार ! नहाने जाते हैं न ? नहाने, क्या कहलाता है तुम्हारे ? बाथरूम। ऐसा समुद्र भरा है पूरा। चैतन्यरत्न का असंख्य प्रदेशों में समुद्र भरा है। समझ में आया ? कहते हैं, ऐसे स्वभाव को तू जान ! उसे जान और **भव तीरु लहु पावहु** यहाँ तो **मुणि** – जानने से भवतीर को पाता है – एक ही बात ली है।

वस्तु की महिमा करके.... भगवान आत्मा ऐसा ज्ञानमूर्तिस्वरूप, आनन्दमूर्ति स्वरूप, शान्तस्वरूप पूर्णानन्द का नाथ असंख्य प्रदेश में बिराजमान भगवान की नजर लगाकर, उसकी नजर लगाकर, उसका ध्यान करके.... **मुणि** का अर्थ ही इतना किया है। उसे जानना अर्थात् ऐसा जानना जो है, ऐसा जानना जो है राग का, निमित्त का (जानना) ऐसा (होता है), ऐसा जान अर्थात् ऐसे (अन्दर में) झुका। समझ में

आया ? आहा...हा... ! यह क्या करना धर्मी को ? – ऐसा कहते हैं। यह तो बहुत संक्षिप्त कर दिया है।

इसे करना यह। भगवान असंख्य प्रदेश में निश्चय से विराजता है, अनन्त गुण का रस लेकर, अनन्त गुण की शक्ति सामर्थ्य लेकर (विराजमान है)। ऐसे भगवान के सम्मुख देख, उसे जान! बस! उसे जानना – इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। एकाग्र हो, **लहु**।

मुमुक्षु – इसमें चारित्र नहीं आया ?

उत्तर – चारित्र नहीं आया ? क्या आया ? यह वस्तु... यह जान अर्थात् जाना, उसकी श्रद्धा और उसमें स्थिरता की। तीनों जानने में आ गये। यह वस्तु – ऐसा जाना, वह किस प्रकार जाना ? स्थिर हुए बिना जाना ? और श्रद्धा किये बिना जाना ? और जाने बिना श्रद्धा ? जाने बिना स्थिरता ? समझ में आया ?

यह चारित्र क्या है ? यहाँ तो इतना कहा। **एहउ अप्पसहाउ मुणि भव तीरु लहु पावहु।** देखो ! पाठ क्या है ? योगसार, योगीन्द्रदेव ऐसा कहते हैं कि ऐसा भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी निश्चय से है, उसे तू **अप्पसहाउ** आत्मा के स्वभाव को जान। जान यही **भव तीरु लहु पावहु।** इसमें तो एक ही शब्द है। समझ में आया ? यह जानने का अर्थ कि आत्मा पूर्णानन्द की ओर जहाँ जानने को गया, वहाँ स्थिरता भी हुई, श्रद्धा भी हुई। पूरा आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु जहाँ ज्ञान में ज्ञात हुआ, उसे कौन सा गुण प्रगट हुए बिना बाकी रहेगा। समझ में आया ? पूरी वस्तु पूर्ण, उसके सन्मुख में झुकने पर, ढलने पर इस अनन्त गुण का अंश, पिण्ड असंख्य प्रदेश में, किस गुण के अंश का अंकुर फूटे बिना रहेगा ? समझ में आया ?

मुमुक्षु – कथन में तो वर्तमान सब बात की है, संक्षिप्त में सब समझ जाये।

उत्तर – वह समझ जायेगा – ऐसा ही (शिष्य) यहाँ लिया है। यह सुननेवाला, मोक्ष चाहता है, वह कैसा होगा ? समझ में आया ? जिसे आत्मा का हित करना है – ऐसा शिष्य यहाँ लिया है। वही समझने का आकाँक्षी है। दूसरे कब आकाँक्षी हैं ? समझ में आया ? सब तो बहुत थोड़े रखे हैं। आहा...हा... !

कहते हैं कि असंख्य प्रदेशी प्रभु, वह हजार योजन के मच्छ में रहे तो भी असंख्य प्रदेशी हैं। आत्मा स्वयंभूरमण समुद्र में जाये, एक हजार योजन का मच्छ है न? है असंख्य प्रदेशी। अंगुल के असंख्य भाग में इतने में रहे तो भी असंख्य प्रदेशी है। असंख्य प्रदेश में कम-ज्यादा नहीं होते। यह तो उसका अपना क्षेत्र ऐसा चौड़ा हुआ, संख्या नहीं बढ़ी, संख्या नहीं घटी। समझ में आया? ऐसे आत्मा का अन्तर में ध्यान कर, कहते हैं। कहो, समझ में आया? (फिर) समुद्घात की बात की है। इष्टोपदेश का अन्तिम श्लोक अपने आ गया था, २१ वाँ.... इन्होंने दिया है। यह है न?

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यंत सौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः॥ २१॥

मुमुक्षु – **तनुमात्रो** है सही न?

उत्तर – हाँ, उसके साथ मेल करने को (दिया है) **यह आत्मा लोकालोक को देखनेवाला....** अन्तिम लाईन है। **अत्यन्त सुखी....** समझ में आया? भगवान आत्मा कैसा है? कि लोकालोक को देखे – ऐसा उसका स्वरूप है। उसका स्वभाव ही लोकालोक को देखने का उसका स्वभाव है, उसे आत्मा कहते हैं। अत्यन्त सुखी है। सुखी अर्थात् भगवान अनन्त सौख्यस्वरूप है। अनन्त आनन्दस्वरूप आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। उसमें राग, द्वेष, और दुःख नहीं है। आहा...हा...! अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का चक्का अन्दर पड़ा है, कहते हैं। भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द, अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द – ऐसा अन्तर में है, उस स्वरूप ही अनादि ऐसा ही है और वह नित्य है। वस्तु से नित्य है। स्वानुभव से उसका दर्शन होता है। देखो, इसके साथ मिलाया है। वह **मुणहु** है न? **मुणहु**। यह आत्मा स्वानुभव अन्तर के अनुभव से ही उसके दर्शन होते हैं। आहा...हा...! किसी मन, वचन की क्रिया या दया, दान, भक्ति के विकल्प द्वारा आत्मा का अनुभव होता ही नहीं। अरे... भगवान! इसे ऐसा लगता है कि अर...र...! अरे भाई! परन्तु करने को यह है। बापू! इसके बिना तेरे सब व्यर्थ हैं। समझ में आया? अरे! हमारा व्यवहार कहाँ जायेगा? अभी इसे व्यवहार जाये, वह रुचता नहीं है परन्तु व्यवहार इसमें नहीं है। यह व्यवहार हो तो यह सब रहेगा, वाला रहेगा... (वरना) व्यवहार समाप्त हो

जायेगा। समाप्त होवे तो अच्छा, सुन न! (आत्मा में) उसमें समायेगा। आहा...हा...! अरे! मेरा शत्रु सामने न रहे तो मैं समाप्त हो जाऊँगा! कहो, समझ में आया इसमें? चैतन्यमूर्ति भगवान अनन्त आनन्द का पिण्ड प्रभु से विरुद्ध जितने विकल्प हैं, वे तो शत्रु हैं। वह शत्रु न रहे तो हमारा क्या होगा? शत्रु न रहे तो सम्प्रदाय का क्या होगा? क्या करना है तुझे प्रभु? आहा...हा...!

मुमुक्षु – क्या चाहिए है, वह भूल गया होगा?

उत्तर – पता ही नहीं क्या चाहिए? एक नाम धारा है, धर्म करना... धर्म करना... एक शब्द पकड़ा है। समझ में आया? दो वर्ष के लड़के से कहे न कि देख! अपने बड़े भाई शादी करते हैं, तुझे शादी करनी है? तब (वह) कहे हाँ! विवाह अर्थात् क्या? इसकी उसे कीमत नहीं होती। उसकी जबावदारी क्या है? इसका पता नहीं होता। देख, अपने भाई विवाह करते हैं, बड़े भाई, हाँ! बड़े भाई विवाह करते हैं, तुझे विवाह करना है? तो कहता है हाँ... किस दिन विवाह करना है? आज? तो कहता है, हाँ। कहो, उसे पता नहीं विवाह का, पता नहीं समय का... विवाह अर्थात् क्या? और उसमें क्या होता होगा? इसका कुछ पता नहीं होता। इसी प्रकार इसे कहते हैं कि तुझे धर्म करना है? तो कहता है – हाँ। कहाँ? वह लड़के के जैसा है, हाँ! आहा...हा...! भाई! धर्म कहाँ होता है? धर्म क्या होगा? धर्म का फल क्या है? वह धर्म कितने क्षेत्र में रहने से होता है? आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! यह तो सार, सारवस्तु है। भाई! तू अनन्त आनन्द का पिण्ड प्रभु है न! वह अनन्त आनन्द उसमें नित्य है। उसमें नजर करे तो तेरी मुक्ति हो। इस नजर में श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र तीनों आ गये। **मुणहु** है न? आहा...हा...! और वह आत्मा **स्वानुभूत्या चकासते** वह अपने अनुभव की क्रिया से ही प्रगट होवे – ऐसा उसका स्वरूप है। यह व्यवहार के विकल्प – दया, दान, व्रत के विकल्प से आत्मा प्रसिद्ध हो – ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। आहा...हा...! अरे, इसे कहाँ डालना है? समझ में आया?

तीन लोक का नाथ बादशाह परमात्मा, उसे ऐसे विकल्प हों तो उसे कुछ लाभ हो – शुभ-अशुभ विकल्प हो तो कुछ अन्दर में प्रवेश होता है... अरे! यह तो जिसे छोड़ना है और जिसका आदर करना है, वह आदर करना, उसमें यह विकल्प है नहीं और जिसे

छोड़ना है, उसे लेकर अन्दर में प्रवेश हो सकेगा ? समझ में आया ? एक बात निमित्तरूप से है, परन्तु वह निमित्तरूप से कब कहलाये ? भगवान अनन्त आनन्द की मूर्ति है, असंख्य प्रदेशी परिपूर्ण प्रभु है। यह उसका अन्तर में **मुणहु** अर्थात् ध्यान करना। उसकी ओर का ध्येय करके, उसको ज्ञेय करके, उसमें स्थिरता करने का नाम आत्मा को जानना कहा जाता है।

अरे ! इसे चार गति का दु:ख नहीं लगा है। समझ में आया ? यह व्यवहार के विकल्प भी, भगवान (को) दु:खरूप है। प्रभु सुखरूप है। आत्मा तो आनन्दरूप है। वह आनन्दरूप उस दु:खरूप से प्राप्त होगा ? समझ में आया ? इस कारण यहाँ कहते हैं कि वह तो स्वानुभव से ही ज्ञात हो ऐसा है। वह राग से और विकल्प से ज्ञात हो – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! क्या हो ? इसने अनादि से लुटा दिया है। लुटा दिया है। लूट, लूट आत्मा को लूट, अज्ञानभाव से लूट गया। कुछ नहीं रहा, उसका क्या स्वरूप है ? वह कहीं लक्ष्य में नहीं रहा। भगवान आत्मा, कहते हैं, भाई ! एक स्वसंवेदन से ही ज्ञात हो – ऐसी उसकी शक्ति और उसका सत्व और उसका स्वरूप ही ऐसा है। उसका स्वरूप ऐसा है, उससे विरुद्ध तू करने जाये तो अन्दर की प्राप्ति किस प्रकार होगी ? समझ में आया ?

अरे ! तीन लोक के नाथ परमेश्वर केवलज्ञानी ऐसा फरमाते हैं – भाई ! तू तो अनन्त आनन्दस्वरूप है न ! और वह भी तू तुझसे ही वेदन करके अनुभव कर सके – ऐसी तेरी चीज है। तुझे ऐसे पामर विकल्प की आवश्यकता नहीं है। इस भिखारी पामर राग की तुझे जरूरत नहीं है। भाई ! इसके सहारे की तुझे जरूरत नहीं है। आहा...हा... ! परन्तु मूढ़ कहता है नहीं... नहीं... नहीं... नहीं...।

मुमुक्षु – पहले ऐसा होता है न ?

उत्तर – परन्तु क्या पहले – पीछे था कब ? यहाँ यह तो बात करते हैं। आहा...हा... ! इसमें समझ में आया ?

वह इसमें आता है, श्वेताम्बर में एक कथा आती है न ? 'सुकुमारिका', हैं ? सुकुमारिका, द्रौपदी का जीव, पूर्व में उन मुनि को आहार दिया था न ? ऐसा आता है। ज़हर का आहार दिया था, कड़वी तुम्बी का (आहार दिया था)। घूमते-घूमते शरीर ऐसा मिला,

जहर जैसा मिला, शरीर। कोई उसका हाथ पकड़े तो अग्नि लगे। विषय-वासना से हाथ पकड़े तो अग्नि लगे, फिर उसके पिता ने कोई ऐसा साधारण भिखारी निकला होगा, युवा व्यक्ति होगा, मक्खियाँ भिनभिनाती हुईं और भिखारी.... उसे अन्दर में ऐसा (लगा कि) इससे विवाह करा दो। फिर बड़े-बड़े करोड़पति हैं परन्तु उन्हें किसलिए बुलाते हैं? आओ...आओ! सेठ बुलाते हैं... परन्तु किसलिए? घर में दामाद बनाने को बुलाते हैं। अन्दर आया, वहाँ वे गन्दे कपड़े थे न? लकड़ी, टोपी, डण्डा, कटोरा... सेठ ने हुक्म किया कि डाल दे.... डाल दे इन्हें.... उन्हें डालने लगे तो यह चिल्लाने लगा। इसे ऐसा लगा कि अर...र...! मेरा इतना भी जाता है। यह तो मिले तब सही.... परन्तु अपनी पुत्री का विवाह करते थे, विवाह किया परन्तु विवाह करके चला गया। क्योंकि अग्नि जैसा लगे तो भाग गया। तो फिर यह एक गरीब मनुष्य था। युवा व्यक्ति निकला (उसे) बुलाया। नौकर से कहा इसे ले जा, सेठ बैठे थे, वहाँ इस फूटे बर्तन और सकोरा डाल दो। हम अब तो यहाँ सोने के चाँदी के थाल में जीमानेवाले हैं। डालते (थे तब) चिल्लाने लगा। तो फिर सेठ ने ऐसा देखा क्यों चिल्लाता है? उसे विश्वास नहीं आता। इन्हें रखो कौने में, इन्हें इसके कौने में रखो। देखो, यह लक्षण पहले से.... इसलिए फिर जहाँ कन्या का विवाह किया, अच्छे कपड़े पहनाये, लाख-लाख रुपये के कपड़े... परन्तु ऐसा हाथ जहाँ पकड़ा, अग्नि... अग्नि... हाय... हाय...! अब? रात्रि में जब पलंग पर सोने गया, वहाँ करवट जहाँ ऐसा करे वहाँ अग्नि.... वह सो रही थी वहाँ भगा... कपड़े-वपड़े उतारकर हाँ, नहीं तो वापस पकड़ेंगे। सुना है? ज्ञातासूत्र में यह आता है। वह सब छोड़ दिया, वापस उस कौने में रखा था, उसे लेकर भाग गया।

इसी प्रकार यह अनादि का भिखारी, भगवान बुलाते हैं कि ले... तुझे अनुभव की परिणति से विवाह कराते हैं, चल... चल... परन्तु इसे (लगता है कि) मेरे विकल्प चले जायेंगे और मेरा व्यवहार चला जायेगा। अरे...! नहीं जायेगा, सुन न अब। मलूकचन्दभाई! भाईसाहब! मेरे व्यवहार के उस विकल्प का क्या करना? व्यवहार से प्राप्त होता है वह विकल्प? भगवान कहते हैं भाई! रख... रख... रख... परन्तु अब उसे रखकर उसकी दृष्टि छोड़कर यहाँ आ। आने की दरकार है नहीं, उस पर प्रेम है। वहाँ प्रेम को छोड़ा नहीं

इसलिए अन्दर में जा नहीं सकता, हो गया सफेद मूली जैसा, ऐसा का ऐसा। राग और व्यवहार लेकर चौरासी के अवतार में चला गया। ज्ञातासूत्र में यह आता है। यहाँ तो सब कथा व्याख्यान में पढ़ी है न। आहा...हा... !

मुमुक्षु – पढ़ी हुई और बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई।

उत्तर – बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई... यहाँ से वहाँ सब बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई, हों ! इतना फूटा घड़ा उसे छोड़ना रुचता नहीं, उसे उसके पैसे कमाने हैं। अरे ! परन्तु इससे पहले ही तेरा पाप का उदय लगता है। इसी प्रकार इसे, व्यवहार नहीं होता, व्यवहार बिना प्राप्त होता है ? अरे...रे... ! तब कहे व्यवहार साधन है, साधन। (तब इसे ऐसा होता है) हास। परन्तु वह साधन नहीं, सुन न, साधन कहा है, वह तो उसे छोड़कर स्वभाव में एकाग्र होवे तो उसे व्यवहार साधन कहा जाता है। आहा...हा... ! बेचारे चिल्लाते हैं... पुकार... पुकार। सोनगढ़ के सामने पुकार, उसके सामने पुकार। भगवान ! यह बात नहीं बदलेगी, तुझे पता नहीं है। यह तो तीन काल तीन लोक में सिद्ध हुई सर्वज्ञ से आयी हुई बात है। यहाँ क्या पुकार करता है ? देखो न !

कहते हैं कि **आत्मा परमानन्द पद अपने शुद्ध आत्मदेव को शरीर प्रमाण आकारधारी माने और उसका ध्यान करे....** देखो ! समझ में आया ? अपने स्वरूप का ध्यान कर, भाई ! परन्तु सीधा ध्यान ? पाधरू अर्थात् समझे ? सीधा, कुछ करने का तो कहो, परन्तु करना यहाँ छोड़ने का है। आहा...हा... ! अब कहते हैं, देखो ! पच्चीसवीं (गाथा)

☆ ★ ☆

सम्यक्त्व बिना ८४ लाख योनि में भ्रमण

चउरासी लक्खहिँ फिरिउ, कालु अणाइ अणंतु।
पर सम्मत्तु ण लद्धु जिउ, एहउ जाणि णिभंतु॥२५॥

लक्ष चौरासी योनि में, भटका काल अनन्त।
पर सम्यक्त्व तू नहिं लहा, सो जानो निर्भान्त॥

अन्वयार्थ – **(अणाइ काल)** अनादि काल से **(चउरासी लक्खह फिरिउ)**

यह जीव ८४ लाख योनियों में फिरता आ रहा है। **(अणंतु)** व अनन्त काल तक भी सम्यक्त्व बिना फिर सकता है। **(पव सम्मत ण लद्धु)** परन्तु अब तक इसने सम्यग्दर्शन को नहीं पाया है **(जिउ)** हे जीव! **(णिभंतु एहउ जाणि)** नि:सन्देह इस बात को जान।

☆ ★ ☆

अरे.... **सम्यक्त्व बिना ८४ लाख योनि में भ्रमण।** यह ८४ लाख योनियाँ एक आत्मा की सीधी अनुभवदृष्टि लिये बिना, इससे होगा और इससे होगा और इससे होगा, होली की विकल्प से होता है और शुभभाव से धर्म होगा – ऐसा मानकर, आत्मा के स्वरूप का अनुभव-सम्यग्दर्शन नहीं किया। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण किया।

चउरासी लक्खहिँ फिरिउ, कालु अणाइ अणंतु।
पर सम्मत्तु ण लद्धु जिउ, एहउ जाणि णिभंतु॥२५॥

अनादि काल से यह जीव ८४ लाख योनियों में भटकता फिरता रहा है। स्वर्ग में अनन्त बार गया है। चौरासी में आया या नहीं? स्वर्ग में.... आहा...हा...! भाई! तुझे आत्मा का अन्तर ध्यान, सीधे राग को छोड़कर सम्यग्दर्शन, स्वरूप के अभेद की दृष्टि करना – ऐसा जो सम्यग्दर्शन, उसके बिना अनन्त काल में एक कोई योनि खाली नहीं रखी। नरक में दस हजार वर्ष की स्थिति में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। दस हजार और एक समय की स्थिति में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? दस हजार.... कम से कम दस हजार (वर्ष) की स्थिति नरक में है। नारकी। नरक में है न? पहले नरक, दस हजार वर्ष (की स्थिति में) वहाँ अनन्त बार उत्पन्न हुआ। वह उष्ण वेदना, उसके एक समय अधिक के अनन्त भव, दो समय अधिक के, तीन समय.... (ऐसे) करते-करते अन्तर्मुहूर्त.... एक-एक समय के अनन्त अनन्त भव किये। ऐसा जाओ, एक सागरोपम, उसके जितने समय हैं, उन-उन समय के अनन्त भव किये। जाओ, तैंतीस सागरोपम, सातवाँ नरक। आहा...हा...! परन्तु अनन्त काल गया, बापू! तेरा अभेद चिदानन्दस्वरूप सम्यग्दर्शन, वह सम्यग्दर्शन अर्थात् मोक्ष का मार्ग हाथ आ गया। (तब कहते हैं) यह... नहीं, नहीं... इसके बिना नहीं, मुझे इसके बिना नहीं (चलता) मर गया परन्तु इसी-इसी में... अभेद चिदानन्द मूर्ति को सीधी पकड़।

ऐसे सम्यग्दर्शन के बिना नरक के भव अनन्त किये, स्वर्ग के (अनन्त किये)। स्वर्ग में भी दस हजार वर्ष के अनन्त भव किये। वहाँ भी कम से कम दस हजार वर्ष की आयु है, हाँ! भवनपति, व्यन्तर में.... एक समय अधिक, दो समय अधिक... ऐसे अनन्त भव। जाओ, वैमानिक स्वर्ग.... एक सागर, दो सागर – इनके बीच के जितने समय हैं, उतने अनन्त भव। नौवें ग्रैवेयक तक इकतीस सागरोपम में अनन्त भव किये। क्यों?

चउरासीलक्खह फिरिउ काल अणाइ अणंतु अनन्त अर्थात् उनका यह शब्द आया, देखो! यह अनन्त काल भटका। भूतकाल में भटका, उसकी बात कहनी है न? यहाँ कहीं भविष्य की बात कहाँ है? भले ही अर्थ इन्होंने किया है। समझ में आया? **सम्यक्त्व के बिना घूम सकता है।** ऐसा करके अनन्त का अर्थ किया है। यह तो अनादि काल में, अन्त नहीं – ऐसे काल में अनन्त भव तूने किये हैं – ऐसा यहाँ तो कहना है। आहा...हा...! अरे, चींटी के अनन्त भव, कौवे के अनन्त भव, कसाई के अनन्त भव, शत्रु के अनन्त भव.... आहा...हा...!

यह बिजली का अभी नहीं कहा? मुम्बई में। ऐसे त्रास लोगों को हो जाते हैं परन्तु ऐसे भव तो अनन्त किये हैं। तुझे ऐसा लगता है कि इसे ऐसा (हुआ)। तूने ऐसे अनन्त भव किये हैं। समझ में आया? अनन्त बार घानी में पिला, बिच्छू के कठोर डंक में अनन्त बार मर गया। हाय... हाय...! मर गया। ऐसे मनुष्य के.... ऐसे पशु के (अनन्त भव किये)। भाई तुझे पता नहीं है। चौरासी लाख के अवतार में कुछ बाकी नहीं है; एक सम्यग्दर्शन बिना (कुछ बाकी नहीं है), देखो! क्या कहा?

पर सम्मत्त ण लध्धु चौरासी के अवतार स्वर्ग के किये उसका क्या अर्थ हुआ? नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया तो कैसे पुण्य से जाता है? पाप से नौवें ग्रैवेयक जाता है? पाप करके नौवें ग्रैवेयक, इकतीस सागर जाता है? पंच महाव्रत ऐसे हों, शुक्ललेश्या ऐसी हो, ऐसी शुक्ललेश्या, पंच महाव्रत, ब्रह्मचारी.... ऐसे परिणाम द्वारा नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया (परन्तु) सम्यक्त्व नहीं पाया। ऐसे परिणाम से सम्यक्त्व नहीं पाया, वह दूसरे परिणामों से सम्यक्त्व पायेगा? ऐसा यहाँ कहते हैं। आहा...हा...!

वह नहीं, यहाँ तो भटकता है, अनादि की बात है न? समझ में आया?

कहते हैं, एक सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना.... उसकी अंक की बात क्या करना? अनादि काल से अनन्त काल में, भूतकाल में, हाँ! **सम्मत्त ण लध्धु – अभी तक इसने सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया।** इसका क्या अर्थ किया? कि नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, उसके परिणाम कितने थे? त्याग के, वैराग्य के, बाहर के साधन के, पंच महाव्रत के.... हजारों रानियाँ छोड़ीं, हजारों रानियाँ छोड़कर त्याग किया? अट्ठाईस मूलगुण अनन्त बार पालन किये – ऐसे अट्ठाईस मूलगुण पालन से सम्यक्त्व नहीं प्राप्त हुआ। अब तुझे साधारण शुभराग से सम्यक्त्व पायेगा ऐसा कहना है? समझ में आया? इस भगवान के अखण्डानन्द के आदर बिना सम्यक्त्व नहीं पाया। अमुक से नहीं पाया – ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। क्या कहा? नौवें ग्रैवेयक आदि अनन्त भव किये, भगवान! भाई! तेरी नजर नहीं पहुँचती, क्या हो? इस तरह आदि नहीं होती, आदि नहीं होती, आदि नहीं होती। आहा...हा...! समझ में आया?

अभी कोई कहता था, नहीं वह? पन्द्रह दिन पहले यहाँ कोई नाटक होता था न? नहीं? दो लड़के जाते थे। एक दस वर्ष का लड़का 'जिथरी'.... उसको चाँदी के बटन थे, वे ले लिये और डाल दिया कुएँ में। वहाँ कुएँ में पानी नहीं, पत्थर थे और एक बड़ा फणधर सर्प बैठा था। कहो? दो चार घण्टे, डेढ़ बजे निकला.... चिल्लाये... चिल्लाये... हाय...! ऐसे नहीं निकला जाता। सर्प के सामने चार घण्टे-पाँच घण्टे शोर मचाये। प्रातः काल हुआ (तब) कोई निकला होगा (उसे लगा) इसमें लड़का लगता है। चाँदी के बटन होंगे और साथ में निकले होंगे। अब ऐसे छोटे कुएँ में चिल्लाये... यह चौरासी का बड़ा कुआ है। (इसका भय नहीं है।) आहा...हा...! तेरे मिथ्यात्व भाव ने अनन्त बार कुएँ में डाला। समझ में आया? काले नाग जैसा मिथ्यात्वभाव.... इस पुण्य से धर्म होगा और क्रिया से धर्म होगा और राग से लाभ होगा (– ऐसा माना)। भगवान के बिना सम्यक्त्व नहीं होता – ऐसा तूने माना नहीं। राग के बिना और अमुक के बिना नहीं होता – ऐसा मानकर तूने अनन्त भव किये हैं –ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

पर सम्मत्त ण लध्धु ऐसे भव किये और सम्यक्त्व नहीं पाया? इन भव के कारण का सेवन किया और सम्यक्त्व नहीं पाया। तब इसका कारण कि जिस भाव के कारण से

भव मिले, उस कारण से सम्यक्त्व नहीं मिलता। कहो, समझ में आया? नौवें ग्रैवेयक गया, अट्ठाईस मूलगुण (ऐसे पालन किये कि) चमड़ी उतारकर नमक छिड़क दे तो क्रोध न करे – ऐसी तो जिसकी क्रिया हो, तब नौवें ग्रैवेयक तक जाये.... ऐसा करने पर भी सम्यक्त्व नहीं पाया तो इसका अर्थ वह दूसरी चीज है। इसके द्वारा, इस भाव और इससे वह प्राप्त हो – ऐसी चीज नहीं है, यह कहते हैं। योगसार का वर्णन है न! वह सार नहीं, योग नहीं, वहाँ जुड़ान किया, वह नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

बादशाही छोड़ी, जंगल में अनन्त बार रहा.... परन्तु क्या हुआ? अन्दर में चैतन्य बादशाह को पहचाना नहीं! ऐसी क्रिया करूँगा तो अपना कल्याण होगा? ऐसा त्याग किया और शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया (तो) कल्याण होगा (– ऐसा मानकर) मर गया, उसी-उसी में, कहते हैं। आहा...हा...! देखो, यह योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि, योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि जंगलवासी इस जगत के समक्ष यह बात रखते हैं। योगसार – आत्मा के स्वभाव का आश्रय करके जो सम्यक्त्व का निर्मल योग प्रगट होता है, वह तूने अनन्त काल में प्रगट नहीं किया। समझ में आया? धर्मध्यान के 'काउसग्ग' में पाठ आता है। उन लोगों में – स्थानकवासियों में नहीं आता? एक सम्यक्त्व के बिना ऐसा अनन्त बार कर चुका, अमुक किया.... आता है या नहीं? ए... भगवानभाई! इसे सम्यक्त्व कब था? भान नहीं है। अभी सम्प्रदाय की विधि का पता नहीं है, देव-शास्त्र-गुरु कैसे होते हैं? इसका पता नहीं है। किसकी दीक्षा और किसका साधु? समझ में आया? नौवें ग्रैवेयक में इस प्रकार गया तो भी मिथ्यात्व का अभाव नहीं हुआ। क्योंकि वह परभाव है, यहाँ तो साधारण अभी कोई दया, दान के साधारण परिणाम करे तो इसे धर्म हो गया? आहा...हा...!

चउरासी लक्खहिँ फिरिउ, कालु अणाइ अणंतु।
पर सम्मत्तु ण लद्धु जिउ, एहउ जाणि णिभंतु॥२५॥

ऐसा निर्भ्रान्त जान। निर्णय कर कि अनन्त भव में अनन्त भाव किये परन्तु उस भाव द्वारा सम्यक्त्व नहीं पाया। सम्यक्त्व को अन्दर भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु का आश्रय करने से सम्यक्त्व होता है, दूसरे किसी का आश्रय करने से प्राप्त नहीं होता। समझ में आया? आहा...हा...! उसे भी कहते हैं कि इसे पर की महिमा लगी है और स्व की

महिमा नहीं आयी। स्वयं अनुभव होने योग्य स्वयं से है, पर के अवलम्बन से नहीं। राग और व्यवहार के अवलम्बन से अनुभव होने योग्य यह चीज – आत्मा नहीं है। ऐसी आत्मा की महिमा किये बिना, अनन्त बार भटककर मरा। अहिंसा पालन की और दया पालन की, व्रत पालन किये, भक्ति की, तपस्या (की), बारह-बारह महीने के अपवास, बारह-बारह महीने के अपवास.... भिक्षा के लिये जाये तो अकेले मुरमुरे (और) पानी – जल (मिले)। क्या हुआ?

भगवान आत्मा एक स्वरूप सीधा अनुभव होने योग्य है, उसकी इसने महिमा नहीं की। समझ में आया? कहो, हरिभाई! इस पैसे की महिमा और इस धूल की महिमा। आहा... हा...! देखो न! कैसा अलग प्रकार का आया है या नहीं? सीधा हाथ में रखे ऐसा है? यह नया आया है। नये प्रकार का आवे तो नये प्रकार का उसको पकड़ना है न? ऐसे जगत के मोह हैं। नयी फैशन हो, तब लोगों को महिमा लगती है, उसमें से समझे तब तो धर्मी के पास सुनने ही नहीं जाये, उससे यदि प्राप्त हो जाये तो। समझ में आया? आहा...हा...!

परन्तु सम्यक्त्व के बिना चौरासी में भटक सकता है। **परन्तु आज तक इसने सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया, हे जीव! निःसन्देहपने यह बात जान।** और भविष्य का लेना हो तो जहाँ तक आत्मा का – भगवान आत्मा का सीधा अनुभव होने योग्य **स्वानुभूत्या चकासते** – वीतरागी पर्याय से अनुभव हो सके – ऐसा आत्मा है, उसे प्राप्त किये बिना अनन्त काल भविष्य में भी भटकेगा। समझ में आया? यह जान **णिभंतु** देखो! स्वयं कहते हैं, हाँ! एक सम्यक्त्व नहीं पाया। चारित्र नहीं पाया – ऐसा कहा है? सम्यक्त्व हो, तब चारित्र होता है, उसके बिना चारित्र नहीं होता। यह सब क्रियाकाण्ड, यह चारित्र है? यह तो इसने अनन्त बार किया है।

मुमुक्षु – यह तो अचारित्र है।

उत्तर – अचारित्र तो अनन्त बार किया है। देखो, रत्नकरण्डश्रावकाचार में इस श्लोक की थोड़ी टीका की है। देखो!

न सम्यक्त्वसमं किंचित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम्॥ ३४॥

यह रत्नकरण्डश्रावकाचार, समन्तभद्राचार्यदेव ने बनाया है। उसका श्लोक दिया है। है न इस ओर? **तीन लोक में और तीन काल में सम्यग्दर्शन के समान जीव का कोई भी हितकारी नहीं है....** कोई भी हितकारी नहीं अर्थात् चारित्र भी हितकारी नहीं है – ऐसा नहीं कहना है, हाँ! यहाँ तो सम्यग्दर्शन के बिना दूसरे परिणाम कोई भी आत्मा को हितकारी नहीं हैं – ऐसा कहना है। फिर वापस उसे सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु – पंच महाव्रत के परिणाम तो होते हैं।

उत्तर – चारित्र तो महा हितकारी है। यहाँ तो दूसरे परिणाम अनन्त बार किये... दया, दान, व्रत, भक्ति, देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, विकल्प, राग, पंच महाव्रत अनन्त बार कर चुका, उनकी कोई कीमत नहीं है। तीन लोक और तीन काल में (वे हितकारी नहीं हैं)। समन्तभद्राचार्य, रत्नकरण्डश्रावकाचार.... जो व्यवहार आचरण का ग्रन्थ है, उसके ग्रन्थ में पहली भूमिका यह बाँधते हैं कि इसके बिना तेरे व्रत-फ्रत फिर हम कहेंगे, वह होते नहीं।

मिथ्यादर्शन के समान जीव का कोई भी अहित करनेवाला नहीं है। लो! एक सामने बात रखी, देखो! (अहित करनेवाला) कहा। भगवान आत्मा परिपूर्ण शुद्ध स्वभाव का आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, उस सम्यग्दर्शन के अतिरिक्त जगत में कोई हित की चीज नहीं है। कहो, समझ में आया? और मिथ्यात्व के समान जीव का बुरा करनेवाला कोई नहीं है। शुभपरिणाम हो या अशुभपरिणाम हो, इतना बुरा नहीं करते; अशुभभाव – हिंसा, झूठ, चोरी, भोग, विषय-वासना के अशुभपरिणाम हैं, वे इतना बुरा नहीं करते परन्तु मिथ्याश्रद्धा उससे अनन्तगुना बुरा करनेवाली है। आहा...हा...!

भगवान आत्मा (ने) अपने स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अनन्त काल में नहीं की। (जीव को) उसकी कोई कीमत ही नहीं, कहते हैं। तीन लोक -तीन काल में उसके (सम्यग्दर्शन) जैसी कोई चीज नहीं है। मिथ्यात्व (अर्थात्) भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उससे विरुद्ध एक शुभराग के कण से भी कल्याण होगा, यह देह की क्रिया मुझे सहायक होगी तो मेरा कल्याण होगा – ऐसी मिथ्यात्व की मान्यता जैसी जगत में कोई बुरी चीज नहीं है। कहो, रतनलालजी! आहा...हा...! पता नहीं परन्तु

अभी सम्यक्त्व किसे कहना ? किंचित् आधार, कोई आधार (लेना चाहते हैं) निरालम्बी निरपेक्ष चीज को सापेक्षता से होना मानना, यह बात मिथ्या है – ऐसा यहाँ कहते हैं। भले व्यवहार हो, होवे तो क्या है ?

भगवान आत्मा.... सीधा आत्मा हूँ, उस पर तो बात है। जाना नहीं, सीधा भगवान ज्ञायकस्वरूप परमात्मा, उसे किसी राग और निमित्त, गुरु और किसी शास्त्र, किसी क्षेत्र, किसी आधार की, किसी की आवश्यकता नहीं है – वह ऐसा निरालम्बी भगवान पड़ा है। उसकी अन्तर में श्रद्धा और ज्ञान बिना (सब व्यर्थ है)। उसकी श्रद्धा और ज्ञान की क्या कीमत ? तीन लोक-तीन काल में उसके जैसा कोई हितकर है ही नहीं। समझ में आया ? और राग के कण को भी लाभदायक मानना, पर के आश्रय से कुछ कल्याण होगा, धीरे-धीरे कुछ करेंगे, पर का कुछ करेंगे तो पायेंगे.... करेंगे, राग करेंगे तो पायेंगे – ऐसी जो मिथ्या श्रद्धा, राग करेंगे तो आत्मा पायेंगे, ऐसी मिथ्याश्रद्धा के अतिरिक्त जगत् में कोई बुरा करनेवाला नहीं है। आहा...हा...! कहो, समझ में आया ? आहा...हा...!

देखो! **सम्यग्दर्शन को शुद्ध पालन करनेवाला जीव, पाँच अहिंसा आदि व्रतों से रहित होने पर भी मरकर नारकी पशु, नपुंसक, स्त्री, नीच कुल का, अंगरहित, अल्प आयुवाला या दरिद्री नहीं होता....** लो! अकेले सम्यक्त्वसहित मरे... पंच महाव्रत बिना... तो भी वह इतने में – हल्के में नहीं जाता। हल्की गति में उत्पन्न नहीं होता – ऐसा कहते हैं। स्वरूप का भान हुआ, उसकी गति हल्की नहीं होती। आहा...हा...! मोक्ष के पंथ में पड़ा, उसे बाहर में हल्की गति नहीं होती – ऐसा। समझ में आया ? **यदि सम्यक्त्व होने से पहले नरक, तिर्यंच या अल्प आयुष्य बाँधा हो तो पहले नरक में....** जाता है। यह तो ठीक। समझ में आया ? ऐसी उसकी व्याख्या की है। लो! **चउरासी लक्खह फिरिउ पर सम्मत्त ण लध्धु।**

☆ ★ ☆

शुद्ध आत्मा का मनन ही मोक्षमार्ग है

सुद्ध सचेयणु बुद्धु जिणु, केवल-णाण-सहाउ।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, जइ चाहहु सिव-लाहु॥२६॥

शुद्ध सचेतन बुद्ध जिन, केवलज्ञान स्वभाव।
सो आतम जानों सदा, यदि चाहो शिवभाव॥

अन्वयार्थ – (जइ सिवलाहु चाहउ) यदि मोक्ष का लाभ चाहते हो तो **(अणुदिणु सो अप्पा मुणहु)** रात-दिन उस आत्मा का मनन करो जो **(सुद्धु)** शुद्ध वीतराग निरंजन कर्म रहित हैं **(सच्चेयणु)** चेतना गुणधारी है या ज्ञान चेतनामय है **(बुद्धु)** जो स्वयं बुद्ध है **(जिणु)** जो संसार विजयी जिनेन्द्र है **(केवलणाणसहाउ)** व जो केवलज्ञान या पूर्ण निरावरण ज्ञानस्वभाव का धारी है।

☆ ★ ☆

२६। **शुद्ध आत्मा का मनन ही मोक्षमार्ग है।** भगवान आत्मा को, पूर्णानन्द के नाथ को अन्दर निर्विकल्परूप से अनुभव करना, यह एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? कहते हैं कि शुद्ध आत्मा.... समझ में आया? यह पवित्र आत्मा अन्दर है, यह शरीर, वाणी, मन को मिट्टी-जड़ है, यह तो धूल है। अन्दर आठ कर्म के रजकण हैं, वे मिट्टी-धूल है और आत्मा में पुण्य और पाप के दो भाव होते हैं, वह मलिन / विकार है। उनसे रहित भगवान अन्दर विराजमान आत्मा, वह तो सच्चिदानन्द आनन्दकन्द सिद्धसमान है। समझ में आया? आहा...हा...! ऐसे शुद्ध भगवान आत्मा की एकाग्रता-मनन, वही मोक्ष का मार्ग है; दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया? देखो!

सुद्ध सचेयणु बुद्धु जिणु, केवल-णाण-सहाउ।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, जइ चाहहु सिव-लाहु॥२६॥

अरे! भगवान आत्मा! यदि मोक्ष का लाभ चाहता हो, यदि परमानन्दरूपी मोक्ष की दशा चाहते हो तो रात-दिन इस आत्मा का मनन करो... आहा...हा...! अरे! यह जबावदारी.... शर्त इतनी है कि यदि तुझे पूर्णानन्द की प्राप्तिरूपी मोक्ष की इच्छा हो तो.... शर्त इतनी, हैं? पुण्य चाहिए हो, पैसा चाहिए हो, स्वर्ग चाहिए हो तो उसके लिए यह बात नहीं है। वह तो भटकनेवाले अनन्त काल से भटकते हैं। आहा...हा...! कहते हैं.... गाथा बहुत उत्कृष्ट है, हाँ! जरा एक-एक शब्द अच्छा उत्कृष्ट है।

सिवलाहु चहद भगवान! शिव अर्थात् मोक्ष। परमानन्द की, आत्मा की दशा, आत्मा की पूर्ण शुद्ध आनन्ददशा का नाम मोक्ष है। ऐसी मोक्ष की दशा.... आत्मा में शुद्धता तो परिपूर्ण पड़ी है, उसकी वर्तमान दशा में परिपूर्ण शुद्ध और आनन्द की परिपूर्णता की प्राप्ति होना, उसका नाम मुक्ति है। यदि ऐसी मुक्ति का लाभ चाहता हो... यह शर्त। तो **अणुदिणु सो अप्पा मुणहु**। रात-दिन, भगवान शुद्ध परमात्मा निर्मलानन्द है, यह उसका ध्यान कर। आहा...हा...! हैं? कहो, निहालभाई! निहाल होना हो तो यह कर – ऐसा यहाँ कहते हैं। आहा...हा...! अरे... भगवान! परन्तु तू बड़ा पड़ा है न प्रभु! महा शुद्धस्वरूप है न! २६ वीं गाथा है न? यह गाथा है, इसमें अर्थ नहीं, यह तो ऊपर से अर्थ (होता है)।

यह आत्मा अन्दर विराजमान है, वह तो महा शुद्ध पवित्र है। उसे आत्मा कहते हैं। शरीर, वाणी, मन तो मिट्टी-धूल, धूल है, वह तो राख है। अन्दर आठ कर्म जिन्हें कहते हैं, वह तो जड़ है और यह हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग वासना के भाव होते हैं, वह तो पाप है और दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा के भाव होते हैं, वह पुण्य है। ये दोनों भाव मलिन विकार है। दोनों विकार के पीछे भगवान शुद्ध चिदानन्द मूर्ति आत्मा है। आहा...हा...! पता नहीं, कभी सुना नहीं, कितना हूँ, कैसा हूँ? यह सुना नहीं। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक ज्ञान में ज्ञात हुए, पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण प्रगट हुआ, उनकी वाणी में आया कि अरे... आत्मा! तू तो शुद्ध है न प्रभु! पहला 'शुद्ध' शब्द है। शुद्ध वीतराग निरंजन कर्मरहित है (– ऐसी) चीज है, उसका मनन कर। राग का मनन, पुण्य का, व्यवहार का मनन (छोड़)! समझ में आया? यदि तुझे मुक्ति-मोक्ष का लाभ चाहिए हो तो.... भटकने का लाभ अनन्त काल से करता है, उसमें कोई नयी बात नहीं है। चौरासी के चक्कर अनन्त काल से खाया ही करता है। तुझे आत्मा की शान्ति की पूर्णता की प्राप्ति – ऐसी जो मुक्ति, ऐसे शिव का-मोक्ष का लाभ यदि चाहिए हो तो इस शुद्ध का मनन कर।

परमानन्द की मूर्ति प्रभु, पुण्य-पाप से रहित है। कर्म, शरीर से रहित है; अपने अनन्त पवित्र गुणों से सहित है – ऐसे भगवान का तू मनन कर। भाई! इस राग और पुण्य

के मनन से प्रभु प्रगट हो – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया? यह तेरे दया, दान और व्रत के शुभपरिणाम से भगवान ज्ञात हो – ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। समझ में आया? निर्विकल्प नाथ, सत्चिदानन्द प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ अन्दर पूर्ण अनन्तगुण से भरा हुआ तत्त्व है, उसकी तुझे प्राप्ति करना हो तो उसका मनन कर। शरीर, निमित्त आया तो ठीक; इससे मिलेगा – यह मनन करना रहने दे – ऐसा कहते हैं। ऐसे निमित्त होवे तो ठीक, ऐसा शुभराग होवे तो ठीक, ऐसी कषाय की मन्दता के परिणाम होवें तो ठीक – यह मनन तो तूने राग का किया। समझ में आया? यह मनन तो तूने अनादि काल से किया है। इससे अनादि से संसार फलता है, अब तुझे मुक्ति करना है या नहीं? या चक्कर खाना है चौरासी के? कैसे होगा? मलूकचन्दभाई! पैसे-वैसे में सुख होगा या नहीं? नहीं? धूल में भी नहीं। वहाँ धूल में कहाँ सुख था? यह तो मिट्टी के परमाणु धूल है, उन पर लक्ष्य करे, वह तो राग और ममता, पाप है। उसे घटाने के कदाचित् दान के परिणाम करे तो वह शुभराग है। उसका मनन है? वह आत्मा का कल्याण है?

यहाँ तो कहते हैं – अहिंसा का, सत्य का, अचौर्य का, दान का, शुभभाव का तुझे मनन करना है? वह मनन करके तो अनन्त काल भटका है। आहा...हा...! शुद्ध वीतराग निरंजन भगवान आत्मा, पूर्णानन्द का नाथ, शुद्ध निरंजन-कर्म का अंजन नहीं और वीतराग.... कर्मरहित है, प्रभु! उस पर दृष्टि कर, यह सत्ता विराजमान प्रभु आत्मा है। अनन्त गुण का पिण्ड है – ऐसी महासत्ता प्रभु पर दृष्टि कर और उसका मनन कर! यह एक ही उसका मनन और एकाग्रता ही मुक्ति का उपाय है। कहो, ठीक होगा? दो मार्ग होंगे? यह भी मार्ग होगा और कोई दया, दान, व्रत से भी मुक्ति होती होगी? धूल में भी नहीं। समझ में आया? वे तो पुण्यबन्ध के कारण हैं। भगवान आत्मा शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... उसका मनन कर, उसका ध्यान कर और उसकी एकाग्रता कर तो तुझे परम्परा कल्याण, केवलज्ञान होगा और मुक्ति का लाभ होगा। दूसरे बहुत बोल हैं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)